धान की आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग): एक उभरती गंभीर समस्या एवं बढ़ती हानि के संदर्भ में कारण, लक्षण, रोग चक्र, प्रसार, आर्थिक हानि तथा समेकित प्रबंधन का विस्तृत अध्ययन

विनय कुमार एवं मुकेश श्रीवास्तव

पादप रोग विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर–208002, उत्तर प्रदेश, भारत

ईमेलः *vinaykumar01121@gmail.com*

धान विश्व की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में शामिल है, जिसका सर्वाधिक उत्पादन एशिया में होता है। आधुनिक कृषि पद्धतियों, उच्च उत्पादक किस्मों के उपयोग और उर्वरकों के अधिक प्रयोग के कारण विभिन्न रोगों का प्रकोप बढ़ा है। शीथ रॉट रोग, जो पहले सीमित क्षेत्र तक ही पाया जाता था, अब व्यापक रूप से फैलकर धान उत्पादन के लिए एक गंभीर समस्या बन गया है। धान का आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) *एक महत्वपूर्ण कवक जनित रोग है, जो मुख्यतः सैरोक्लेडियम ओराइजी के कारण होता है। यह रोग विशेष रूप से बूटिंग अवस्था में पौधों को प्रभावित करता है और बालियों के सामान्य विकास में बाधा उत्पन्न करता है। इसके परिणामस्वरूप दाने चपते हो जाते हैं। उनका रंग बदल जाता है तथा उपज में कमी आती है। विभिन्न अध्ययनों में इस रोग से 3 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक उपज हानि की संभावना बताई गई है। रोग का विकास पर्यावरणीय परिस्थितियों, पौधों की संवेदनशीलता और रोगजनक की विषाक्तता पर निर्भर करता है।*

इतिहास एवं वितरण

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) का प्रथम उल्लेख वर्ष 1922 में ताइवान में सवादा द्वारा किया गया। इसके बाद यह रोग जापान, थाईलैंड, अमेरिका, पेरू, ब्राजील, बांग्लादेश, नाइजीरिया तथा पाकिस्तान सहित कई देशों में पाया गया। भारत में इस रोग की पहली सूचना वर्ष 1973 में मिली। इसके पश्चात यह रोग आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, ओडिशा, केरल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश जैसे कई राज्यों में व्यापक रूप से फैल गया। उच्च उत्पादक किस्मों के उपयोग के साथ इस रोग की तीव्रता बढ़ी है, जिससे यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में धान उत्पादन के लिए एक संभावित खतरा बन गया है। वर्तमान में इसे ब्लास्ट और शीथ ब्लाइट के बाद प्रमुख धान रोगों में गिना जाता है।

रोग के लक्षण

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) के लक्षण मुख्यतः फ्लैग लीफ शीथ पर दिखाई देते हैं, जहाँ प्रारम्भ में धूसर केन्द्र तथा भूरे किनारों वाले अनियमित धब्बे बनते हैं। इन धब्बों के चारों ओर हल्के भूरे रंग का आभामंडल दिखाई देता है। समय के साथ ये धब्बे आपस में मिलकर पूरी शीथ को ढक लेते हैं तथा प्रभावित भाग पर सफेद चूर्णीय फफूंदी भी दिखाई देती है। संक्रमित शीथ के भीतर बालियाँ पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पातीं और प्रायः बाहर नहीं निकलतीं, जिसे ''चोकिंग'' कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप दाने बदरंग, सिकुड़े हुए अथवा खाली हो जाते हैं तथा कई मामलों में पौधे बाँझ भी हो सकते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में दानों का आकार प्रभावित हो जाता है तथा बालियों पर भी धब्बे दिखाई देते हैं।

रोग विकास

रोगजनक पौधे में मुख्यतः स्टोमेटा या बाहरी घावों के माध्यम से प्रवेश कर अंतरकोशिकीय रूप से ऊतकों में फलता है। यह रोग पौधे की सभी अवस्थाओ को प्रभावित कर सकता है, लेकिन इसका सर्वाधिक प्रभाव बूटिंग अवस्था के दौरान देखा जाता है। रोग की तीव्रता आंशिक संक्रमण से लेकर

बालियों के आवरण के पूर्ण प्रभावित होने तक भिन्न हो सकती है। इसका प्राथमिक स्रोत संक्रमित बीज और फसल अवशेष होते हैं, जबकि द्वितीयक प्रसार वायु, वर्षा तथा कीटों के माध्यम से होता है। नाइट्रोजन उर्वरक की अधिक मात्रा रोग के विकास को बढ़ावा देती है, हालांकि इस प्रभाव को लेकर विभिन्न अध्ययनों में मतभेद पाए गए हैं। कुल मिलाकर, रोग का विकास पोषक पौधे की संवेदनशीलता, रोगजनक की आक्रामकता तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों के संयुक्त प्रभाव पर निर्भर करता है।

रोग की घटना

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) की घटना का संबंध कीट क्षति तथा विषाणु संक्रमण से भी पाया गया है, क्योंकि तना छेदक कीटों द्वारा बनाए गए घाव रोगजनक के प्रवेश को सुगम बना देते हैं। कुछ अध्ययनों में यह पाया गया है कि लगभग 50 प्रतिशत संक्रमित पौधों में कीट अथवा विषाणु संक्रमण भी साथ–साथ उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त, *टार्सोनेमिड घुन* रोग के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो पत्तियों की सतह पर रहकर रस चूसता है तथा रोगजनक के बीजाणुओं के प्रसार में सहायता करता है। साथ ही, फ्यूजेरियम वंश के कुछ कवक भी इस रोग के साथ सह–अस्तित्व में पाए गए हैं तथा दानों के रंग परिवर्तन में योगदान देते हैं।

रोगजनक का वर्णन

यह कवक सफेद, विरल शाखायुक्त कवकतुं उत्पन्न करता है, जिनकी चौड़ाई लगभग 1.5 से 2. 0 माइक्रोमीटर होती है। कवकतुंओं से उत्पन्न बीजाणुधर, वनस्पतिक कवकतुंओं की तुलना में कुछ मोटे होते हैं तथा एक या दो बार शाखित होकर प्रत्येक स्तर पर 3 से 4 शाखाओं के गुच्छे बनाते हैं। अंतिम शाखाएँ फियालाइड के रूप में कार्य करती हैं, जिनसे अलैंगिक बीजाणु उत्पन्न होते हैं। ये अलैंगिक बीजाणु बेलनाकार से हल्के धुरीनुमा, कभी–कभी थोड़े मुड़े हुए, पारदर्शी, चिकने, एककोशिकीय तथा 4 से 9 × 1 से 2.5 माइक्रोमीटर आकार के होते हैं। कुछ परिस्थितियों में यह कवक अन्य जीवाणु रोगजनकों के साथ मिलकर पर्णावरण को संक्रमित करता है तथा दानों के रंग परिवर्तन का कारण बनता है। यह रोगजनक पौधे में रन्ध्रों तथा घावों के माध्यम से प्रवेश कर संवहनी बंडलों एवं पर्णमध्य ऊतकों में अंतःकोशिकीय रूप से वृद्धि करता है। यह संक्रमित फसल अवशेषों तथा बीजों में कवकतुं के रूप में जीवित बना रहता है।

रोग चक्र

यह रोग मुख्यतः बीज जनित तथा वायु जनित होता है। संक्रमित पौध अवशेष प्राथमिक स्रोत होते हैं। रोगजनक के बीजाणु हवा, वर्षा और कीटों के माध्यम से फैलते हैं। पौधे के बूटिंग चरण में संक्रमण अधिक होता है। द्वितीयक संक्रमण स्वस्थ पौधों में तेजी से फैलता है।

रोग की तीव्रता एवं आर्थिक हानि

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) खरीफ और रबी दोनों मौसमों में पाया जाता है और इससे होने वाली आर्थिक हानि विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग दर्ज की गई है. जैसे ताइवान में 3–20 प्रतिशत, फिलीपींस में 52–80 प्रतिशत, थाईलैंड में 85 प्रतिशत तक, भारत में लगभग 14–50 प्रतिशत तथा अमेरिका में 11–40 प्रतिशत तक, जबकि भारत के कुछ राज्यों में यह नुकसान 50 प्रतिशत तक पहुँच सकता है। रोग की तीव्रता और उपज हानि के बीच स्पष्ट सकारात्मक संबंध देखा गया है, अर्थात् रोग के बढ़ने के साथ उपज में कमी भी बढ़ती जाती है। यह रोग विशेष रूप से ध्वज पत्ती के आवरण के सक्रमण, बालियों के बाहर निकलने की प्रक्रिया और दानों के भराव को प्रभावित करता है, जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आर्थिक दृष्टि स यह रोग अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके कारण दानों का विकास रुक जाता है, जिससे उपज में उल्लेखनीय कमी आती है और गंभीर परिस्थितियों में 3 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक आर्थिक हानि हो सकती है, साथ ही दानों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

अनुकूल परिस्थितियाँ

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग)के विकास के लिए 20–30 डिग्री सेल्सियस तापमान और 65–80 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता अनुकूल मानी जाती है। यह रोग खरीफ और रबी दोनों मौसमों में पाया जाता है, लेकिन बादलयुक्त मौसम, अधिक नमी और कम धूप इसकी वृद्धि एवं प्रसार को और अधिक बढ़ावा देते हैं। विशेष रूप से फसल ;धानद्ध की फूल आने की अवस्था में इसका प्रकोप अधिक गंभीर हो जाता है। लगभग 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान, उच्च आर्द्रता, घना रोपण, नाइट्रोजन उर्वरक की अधिक मात्रा तथा कीटों द्वारा उत्पन्न घाव जैसे कारक मिलकर रोग के विकास और तीव्रता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आर्थिक महत्व

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) के कारण दानों का विकास बाधित होता है, जिससे उत्पादन में भारी गिरावट आती है। गंभीर संक्रमण से 3 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक उपज हानि हो सकती है। इसके अलावा दानों की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है।

रोग का प्रसार एवं प्रबंधन

आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) का प्रसार मुख्यतः संक्रमित बीज, वायु, वर्षा तथा कीटों के माध्यम से होता है, जबकि आधुनिक कृषि पद्धतियाँ, जैसे अधिक नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग, घनी रोपाई तथा अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियाँ, इसके प्रसार को बढ़ावा देती हैं। इसके प्रभावी प्रबंधन के लिए विभिन्न विधियों का समेकित उपयोग आवश्यक है, जिनमें सस्य क्रियाएं उपाय, जैसे रोगमुक्त बीज का चयन, उचित दूरी पर रोपाई, संतुलित उर्वरकों का प्रयोग, खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था तथा संक्रमित फसल अवशेषों का विनाश शामिल हैं। जैविक नियंत्रण के अंतर्गत *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* तथा ट्राइकोडर्मा जैसे जैव नियंत्रक रोगजनक के विकास को दबाने, प्रतिस्पर्धा तथा परजीवी क्रिया के माध्यम से नियंत्रण करने एवं पौधों की रोगरोधी क्षमता बढ़ाने में सहायक होते हैं। वनस्पति आधारित उपायों में नीम तेल, नीम अर्क, लहसुन तथा तुलसी के अर्क का उपयोग किया जाता है, जो प्राकृतिक यौगिकों के माध्यम से कवक की वृद्धि को रोकते हैं।

रासायनिक नियंत्रण के अंतर्गत कारबेन्डाजिम तथा मैंकोजेब जैसे फफूंदनाशकों का प्रयोग, विशेषकर बूटिंग अवस्था में, प्रभावी पाया गया है। समेकित रोग प्रबंधन के अंतर्गत **सस्य क्रियाएं** , जैविक तथा रासायनिक उपायों के संयुक्त उपयोग, रोगरोधी किस्मों का चयन, संतुलित पोषण एवं जल प्रबंधन पर विशेष बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, टैल्क आधारित *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस,* ट्राइकोडर्मा आधारित मृदा उपचार, 3 प्रतिशत नीम तेल, 5 प्रतिशत नीम बीज अर्क तथा जैव कारक युक्त वर्मी कम्पोस्ट जैसे जैव उत्पाद भी रोग नियंत्रण में उपयोगी सिद्ध होते हैं।

जैसे–

जैविक नियंत्रण विधियाँ

- *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* द्वारा बीज उपचार करने से रोग की तीव्रता में 20 से 42 प्रतिशत तक कमी देखी गई है, साथ ही पौधों की वृद्धि तथा दानों के उत्पादन में सुधार होता है।
- *बैसिलस सबटइलिस* द्वारा बीज उपचार 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से किया जाता है, इसके उपरान्त 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की मात्रा को 100 लीटर पानी में घोलकर पौधों की जड़ों को 30 मिनट तक डुबाया जाता है।
- रोपाई के 30 दिन बाद *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* का 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग किया जाता है, जिसे 50 किलोग्राम गोबर की खाद या रेत के साथ मिलाकर खेत में डाला जाता है।

- रोपाई के 45 दिन बाद 0.5 प्रतिशत *बैसिलस सबटइलिस* का पर्णीय छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर रोग की तीव्रता के अनुसार 3 बार किया जाता है।

सस्य क्रियाएं

- फसल कटाई के बाद संक्रमित अवशेषों को नष्ट करना आवश्यक है।
- उचित दूरी पर रोपाई करने से रोग का प्रकोप कम होता है।
- टिलरिंग अवस्था में पोटाश का प्रयोग रोग नियंत्रण में सहायक होता है।
- खेत की सफाई बनाए रखना और खरपतवार नियंत्रण करना भी आवश्यक है।

रासायनिक नियंत्रण

- शीथ रॉट के नियंत्रण के लिए बालियों के निकलने के समय फफूंदनाशकों का छिड़काव करना प्रभावी होता है।
- एडिफेनफॉस का उपयोग उच्च मात्रा स्प्रेयर से किया जाता है।
- ट्राइडेमॉर्फ और फॉस्फामिडोन के संयुक्त उपयोग से रोग नियंत्रण में सफलता मिली है।
- बीज उपचार हेतु मैनकोजेब और बेनोमिल का उपयोग बीज जनित संक्रमण को समाप्त करता है।
- बूटिंग अवस्था में कार्बेन्डाजिम, एडिफेनफॉस या मैनकोजेब का छिड़काव प्रभावी पाया गया है।
- कार्बेन्डाजिम 250 ग्राम प्रति हेक्टेयर, क्लोरोथैलोनिल 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयरया एडिफेनफॉस 1 लीटर प्रति हेक्टेयर का छिड़काव किया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त बेनोमिल और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का पर्णीय छिड़काव भी प्रभावी है।

निष्कर्ष धान की आवरण सड़न रोग (शीथ रॉट रोग) एक जटिल और गंभीर रोग है, जो उपज के साथ–साथ उसकी गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। इसका फैलाव मुख्यतः संक्रमित बीज, कीटों, माइट्स तथा विभिन्न पर्यावरणीय कारकों के माध्यम से होता है। रोग की तीव्रता और उपज हानि के बीच स्पष्ट सीधा संबंध पाया जाता है, जिससे समय पर इसकी पहचान और उचित प्रबंधन की आवश्यकता स्पष्ट होती है। उच्च उत्पादक किस्मों के बढ़ते उपयोग और बदलती कृषि परिस्थितियों के कारण आने वाले समय में इस रोग का महत्व और अधिक बढ़ने की संभावना है।